सामाजिक परिवर्तन एवं संगीत

DR APARNA SHUKLA

Assistant Professor, Department of Vocal Music, Shri Agrasen Kanya PG College Varanasi

सार

प्रत्येक समाज की एक संस्कृति होती है। जिसमें ज्ञान, विज्ञान, कला, आचार, कानून, प्रथा, व्यवहार आदि सम्मिलित होते हैं। इन्हें व्यक्ति समाज का सदस्य होने के नाते दिनचर्या में लाता है। संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती है तथा इसे किसी भी समाज की सामाजिक विरासत कहा जा सकता था। यहीं नहीं समाज के विकास का मापन उसके सांस्कृतिक तत्त्वों से किया जा सकता है और सांस्कृतिक तत्त्वों में कलाओं का विशेष महत्त्व होता है। ललित कलाओं में संगीत को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। क्योंकि संगीत की तीनों विधाएँ देव-निर्मित है जो सृष्टि के आरम्भ से ही मानव से जुड़ी हुई हैं। इस प्रकार समाज और कलाओं का विकास समान रूप से होता आ रहा है। संगीत द्वारा मानव अपनी समस्त आन्तरिक भावनाओं को अभिव्यक्त करता है। संगीत समाज के मनोरंजन के साथ-साथ उसमें नवीन ऊर्जा का संचार भी करता है। आधुनिक समय में सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरूप संगीत में भी अनेकानेक परिवर्तन हुए है जैसे कि गायन शैलियों में तकनीकी व इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के प्रयोगों व फ्यूजन कल्चर इत्यादि।

कुंजी शब्द: *समाज, परिवर्तन, संगीत, मानव, सामाजिक।*

भूमिका

समाज एक अत्यन्त प्रचलित शब्द है। इसका प्रयोग नित्यप्रति बोलचाल की भाषा में व्यक्तियों के समूह के रूप में किया जाता है। यह सामाजिक सम्बन्धों का जाल है। जिसका अर्थ है-कम से कम ऐसे दो व्यक्ति जो एक-दूसरे पर आश्रित होते है तथा एक-दूसरे के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में कार्य करते हैं।[1] इस प्रकार समाज, सामाजिक सम्बन्धों की एक अमूर्त व्यवस्था है।

समाज शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक अण् धातु से अञ् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है।[2] जिसका अर्थ है- सभा, मिलन, समूह, गोष्ठी, समिति, समुच्य आदि। वैष्स्टर कोश के अनुसार जो लोग धार्मिक श्रद्धा, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक, देशभक्ति या अन्य उद्देश्यों के साथ जुड़े होते हैं तथा एक समुदाय के सदस्यों के रूप में रह रहे हाँ, उस संकाय को समाज कहा जाता है।[3] समाज को सामुदायिक जीवन की एक प्रणाली भी कहा गया है जिसमें लोग अपने पारस्परिक लाभ और सुरक्षा के लिए सतत् और नियमित रूप से जुड़े रहते हैं।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। जब से समाज का प्रादुर्भाव हुआ है तब से समाज के रीति-रिवाज, परम्पराएँ रहन-सहन की विधियाँ, पारिवारिक और वैवाहिक व्यवस्थाएँ आदि में निरन्तर परिवर्तन होता आया है, तात्पर्य यह है कि सामाजिक संगठन समाज की विभिन्न ईकाइयों, सामाजिक सम्बन्धों, संस्थाओं आदि में होने वाले परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है। कुछ समाजशास्त्रियों ने सामाजिक परिवर्तन को एक चक्र के समान माना है। जिस प्रकार सर्दी, गर्मी तथा बरसात एक निश्चित क्रम में आते हैं उसी प्रकार प्रत्येक समाज की संस्कृति में परिवर्तन निश्चित दिशा में होते रहते हैं। इन सामाजिक परिवर्तनों को अनेक कारक या कारण प्रोत्साहन देते हैं, जिनमें, भौतिक या भौगोलिक, जैविक, जनसंख्यात्मक, मनोवैज्ञानिक, प्रौद्योगिक, आर्थिक व सांस्कृतिक कारण आदि प्रमुख हैं। सांस्कृतिक परिवर्तन में सामाजिक संगठन के अतिरिक्त संस्कृति के अन्य अंग, कला, विज्ञान, दर्शन आदि भी आ जाते हैं। उदाहरणतः हमारे देश में पाश्चात्य संस्कृति ने भारतीय समाज में अनेक परिवर्तन किए जैसे पर्दा प्रथा की समाप्ति, स्त्री शिक्षा का प्रसार, स्त्रियों का नौकरी करना, संयुक्त परिवार का विघटन और जाति प्रथा का विरोध आदि।[4] अनादि काल से आज तक का समाज विभिन्न पड़ावों से होकर यहाँ तक पहुँचा है और आज भी विकास की ओर लगातार अग्रसर हो रहा है। सामाजिक परिवर्तन का बहुत व्यापक क्षेत्र है। शिक्षा के क्षेत्र में भी समाज में कई सामाजिक परिवर्तन हुए जैसे अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आज सभ्य होने का मापदण्ड हो गया है।

यहीं नहीं अभिवादन की प्रक्रिया में भी परिवर्तन हुआ है। गुरुजनों का सम्मान व अभिवादन जहाँ दण्डवत् प्रणाम द्वारा किया जाता था वहीं, आज मात्र हाथ जोड़कर नमस्ते या हाथ मिलाकर उनका अभिवादन किया जाता है आदि ये सभी तथ्य सामाजिक परिवर्तन को दर्शाते हैं। औद्यौगिकीकरण और पश्चिमीकरण ने भारत के सभी क्षेत्रों में सामाजिक परिवर्तन ला दिये हैं।

स्पष्टतः कह भी सकते है कि सामाजिक संगठन, सामाजिक, संरचना, सामाजिक-व्यवहार, रहन-सहन आदि के किसी भी ईकाई में होने वाले परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।

यद्यपि समाज शब्द अपने आप में कई अर्थ समाहित किये हुए है। समाज का निर्माण या गठन मानव द्वारा ही होता है। अतः समाज एवं मनुष्य की पृथक कल्पना नहीं की जा सकती। इस तथ्य पर गहराई से विचार करने पर यह अनुभव होता है, कि जिस काल में समाज का वातावरण एवं परिस्थितियाँ जैसी रही, मनुष्य का आचरण भी वैसा बना। तात्पर्य यह है, कि समाज की समस्त गतिविधियाँ मान्यतायें, एवं विचारधारायें उसके जीवन को प्रभावित करती हैं। मानव जीवन में नैतिक आचरण की दृष्टि से सदगुणों का विशेष महत्त्व होता है। उसका व्यवहार उसके चरित्र का परिचायक, और चरित्र उसके व्यक्तित्व का दर्पण होता है। आज सम्पूर्ण विश्व के सामाजिक वातावरण में परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। जीवन का कोई भी क्षेत्र इसमें अछूता नहीं है। परिवर्तन या गतिशीलता विकास की सहज एवं स्वाभाविक प्रक्रिया है, जिसे रोका नहीं जा सकता। किन्तु परिवर्तन यदि सुनियोजित रूप में हो तो वह समाज के उत्थान के लिये उपयोगी व सहायक होता है। लेकिन दिशा हीन या उद्देश्यहीन परिवर्तन समाज के लिये घातक है। उससे विनाश की आशंका रहती है, परिवर्तन को उतना ही अपनाना उचित है, जिससे हमारी मौलिकता का स्वरूप विकृत नहो। समाज का निर्माणकर्ता मानव है, और स्वस्थ समाज के निर्माण में संगीत की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। (संगीत से हमारा तात्पर्य विशेष रूप से शास्त्रीय संगीत आदि से है।)

आधुनिक काल का अधिकांश समाज पाश्चत्य सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभावित हो गया है। यह प्रभाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ा है। यहाँ हमारा तात्पर्य विशेष रूप से शास्त्रीय संगीत की गुणवत्ता से है। सामाजिक वातावरण बदलने से उनके उद्देश्य व मान्यता में भी बदलाव आता है। आज से 60-70 वर्ष पूर्व संगीतकारों को राज्याश्रय प्राप्त होने से उन्हें अपने परिवार के भरण पोषण की चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी।[5] इसलिये वे बिना किसी विघ्नबाधा के अपनी इच्छानुसार रियाज करते थे। इतना कठिन परिश्रम करने से उनके गायन वादन की गुणवत्ता बनी रहती थी। वे अपनी कला के प्रति समर्पित रहते थे, जीवन की आवश्यकतायें कम होने से व्यवसायीकरण की प्रवृत्ति से दूर थे। उस समय नौकरी की चिन्ता नहीं रहती थी। सामान्य रूप से उस्ताद के पास रहकर ही संगीत की शिक्षा होती थी। समाज में प्रलोभन की इतनी वस्तुयें भी उपलब्ध नहीं थी। परम्परा का पालन भलीभाँति किया जाता था। किन्तु इसके विपरीत आज की परिवर्तित जीवन शैली के प्रभाव ने परम्पराओं के प्रति उदासीन व नीरस कर दिया है।

इसकी गुणवत्ता में कमी आनें का कारण रोजगार परक पाठ्यक्रमों की भूमिका तथा कम से कम समय में अधिक पाने की लालसा भी है। संगीत का पाठ्यक्रम पूर्ण करने के पश्चात गायन के विद्यार्थी ख्याल धुरपद न गाकर, सुगत संगीत, भोजपुरी गीत व अन्य स्थानों के लोक गीत का गायन कर रहे हैं। सामान्य रूप से यह भी देखा जा रहा है, कि कुछ समय सीखने के बाद ही वह रेडियों तथा दूरदर्शन का कलाकार बन जाना चाहता है। दूरदर्शन के समस्त कार्यक्रम फिल्मों पर आधारित होते हैं, शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम का नामोनिशान अत्यल्प है। आज परोक्ष रूप से जो संगीत हमारे कानों में पड़ रहा है, वह क्या संगीत है, कला के नाम पर जो विकृति बच्चों में दिखाई पड़ रही है, उससे बचना है। नित्य नवीन खोज एवं प्रयोग ने जीवन को मशीन बना दिया है। बच्चों का बचपन समाप्त हो गया है। हमारी भावनाएं तथा संवेदनायें आहत हो रही है। विश्व का दायरा छोटा होता जा रहा है। हम बड़ी-बड़ी इच्छाओं के गुलाम होकर सिमटते जा रहे हैं। अपनी धरोहर को रिक्त करके, परम्परा को, खंडित करके, ध्वनि (क्श्र ब्नसजनतमए थ्नेपवद) को विकृत करके किसी भी नवीन प्रयोग का समावेश ठीक नहीं है। नवीन प्रयोगों का प्रभाव क्षणिक है। इनमें एक प्रकार का चमत्कार है, अतः अपनी परम्परागत चीजों की चिन्ता न करके नवीन प्रयोगों की ओर भागने से संभव है, हम अपे अस्तित्व एवं विरासत को खो बैठें। यह जीवन यापन का साधन हो सकता है, किन्तु इसकी सीमा का कोई अन्त नहीं है। इधर कुछ वर्षों से शास्त्रीय संगीत के राग रागिनियों का प्रयोग मानसिक रोगों के उपचार हेतु भी किया जा रहा है। चिकित्सकों को इस प्रयोग में सफलता भी मिल रही है। भारतीय संगीत अपनी भाव प्रवणता व अध्यात्मवादी स्वरूप के लिये विश्व विख्यात हंै। यह अपने स्वर,

आलाप, लय, गति, मधुर स्वरसंगति आदि के माध्यम से एक संपूर्ण मानसिक प्रभाव उत्पत्र करता है। वैसे तो मानव शरीर की कोई भी व्याधि कष्टदायक होती है, किन्तु मानसिक रोग से ग्रस्त होने पर व्यक्ति सामान्य जीवन नहीं व्यतीत कर सकता। मानसिकता तनाव, अवचेतन, द्वन्द्व आदि मनोदैहिक व्याधियों से मुक्ति दिलाने में संगीत पूर्ण रूप से सक्षम सिद्ध हो रहा है। रागों के प्रयोग से यदि कुछ रोगी भी मानसिक रूप से स्वस्थ होते हैं, तो संगीत के क्षेत्र में यह बहुत बड़ी उपलब्धि है।

वर्तमान काल में योग अध्यात्म, तथा चित्त को एकाग्र करने की दृष्टि से भी विभिन्न रागों का प्रयोग किया जा रहा है। आलाप का प्रयोग ध्यान के लिये हो रहा है[6] , अर्थात् जहाँ शब्द नहीं है, केवल ध्वनि व स्वरों का मेल है। संगीत में असीम सामर्थ है, इतिहास इसका साक्षी है। दूषित चित्त वृत्तियों का निरोध करके मन को पवित्र बनाने की उसमें अपार क्षमता है। मधुर स्वरों के प्रभाव से मनुष्य के हृदय में समाहित क्रूरता एवं निर्दयता का हास होकर शुद्धता का संचार होता है। इसके प्रभाव से व्यक्ति तनाव मुक्त होकर संतुलित व्यवहार की ओर प्रेरित होता है। ध्वनि व शब्दों से जुड़ी यह एक सर्वोत्तम कला है, जिसका सम्प्रेषण व प्रभाव अन्य कलाओं की अपेक्षा अधिक है।

आज समाज के इस बदलते परिवेश में भविष्य की पीढ़ी में रचनात्मक एवं सृजनात्मक शक्ति एवं प्रवृत्ति को बढ़ावा देने हेतु निम्नवत् सुझाव-

- बचपन से बच्चों में शास्त्रीय संगीत के प्रति रूचि जागृत करना।
- इस दृष्टि से यदि माता पिता को संगीत के प्रति थोड़ा भी लगाव होगा तो बच्चे में संगीत का संस्कार डालना आसान होगा। क्योंकि बच्चे में अच्छी आदतों का बीजारोपण करने में पारिवारिक वातावरण की अहम भूमिका होती है।
- दूरदर्शन द्वारा शास्त्रीय संगीत का एक पृथक चैनल आरम्भ करके अच्छे कार्यक्रमों का प्रसारण।
- बच्चों को समय-समय पर संगीत के छोटे कार्यक्रम देकर उनका उत्साहवर्धन करना।
- यह कार्यक्रम एकल व सामूहिक दोनों हो सकते हैं।
- इसमें बच्चे ही संगति भी करें, तो अच्छा रहेगा।

इस प्रकार के संगीत के यथोचित व समुचित प्रयोग के माध्यम से बच्चों की सांगीतिक प्रतिभा का सही दिशा में विकास संभव है। वर्तमान काल में भौतिक तथा अर्थवादी प्रवृत्तियों की अधिकता होने से नैतिक मूल्यों का जो ह्रास, हुआ है, उसे एक सीमा तक संगीत के द्वारा अवश्य दूर किया जा सकता है। संगीत एक ऐसी विद्या है, जिसके द्वारा इन बुराइयों का निराकरण करके एक स्वस्थ मानव समाज का निर्माण संभव है। संगीत की इसी व्यापकता के कारण मानव जीवन के हर क्षेत्र में इसका अधिक से अधिक उपयोग करके अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील है।

यद्यपि सामाजिक परिवेश में लोक संगीत का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसके द्वारा हमें अपने पारम्परिक संस्कारों, रीति-रिवाजों की सुन्दर झाँकी मिलती है। वाणी द्वारा हृदय के उद्गारों को प्रगट करना ही लोक संगीत है। लोक संगीत भी भारत की एक समृद्ध परम्परा है। ग्रामीण अंचल के ये गीत ग्रामीण सभ्यता में आज भी सुरक्षित है। उनमें किसी प्रकार की विकृति का समावेश नहीं हुआ है। लोक-संगीत का समाज में एक विशेष सामाजिक स्वरूप है। इसे हमारे सामाजिक सम्बन्धों का संगीतमय इतिहास भी कहा गया है। इस इतिहास में हमारी पीढ़ियों के मानवीय सम्बन्ध, रीति-रिवाज, विश्वास व धारणाएँ, जीवन के मार्मिक अनुभव प्रेम की मधुर कल्पना और समाज को एक सूत्र में पिरोने आदि की भावनाएँ विद्यमान रहती है। अतः लोक-संगीत के समाजशास्त्र में इसके विभिन्न स्वरूपों के सामाजिक ऐतिहासिक अस्तित्व का वर्णन होना चाहिए व उसकी अन्तर्वस्तु के सामाजिक अभिप्रायों की खोज भी की जानी चाहिये तभी इसका विकास सम्भव है। इसीलिये कहा गया है कि लोक-संगीत का मुख्य आधार वे सामाजिक विश्वास, रीति-रिवाज, उत्सव, त्यौहार एवं अन्य विशिष्ट मूल्य हैं, जो सामाजिक रूप में सामाजिकता से युक्त होते हैं। उसमें सहज-सुलभ मनोरंजन की अनुभूति विशेष रूप से विद्यमान है। उसका जन्म अवश्य ही सामूहिक न होकर व्यक्तिगत है, फिर भी उसमें सम्पूर्ण समाज अथवा किसी विशिष्ट क्षेत्र के समाज की आशा-आकांक्षाओं, सुख-दुःख, राग-विराग आदि का आँकलन होता है और इसी दृष्टि से वह व्यक्ति प्रधान न होकर सामूहिक बन जाता है। वस्तुतः लोक संगीत हमारे सामाजिक सम्बन्धों को जोडे रखने का संगीतमय इतिहास है। लोक-संगीत को मानव हृदय के भावों को अभिव्यक्त करने का सरल एवं सुगम माध्यम कहा गया है। हर्ष-

शोक, राग-द्वेष, भय-निर्वेद आदि सभी मानसिक भावों को लोक धुनों में शब्दबद्ध करके लोक-गीत मनुष्य के हृदय में स्थान पा लेते हैं। यही संगीत भावोत्पादक होकर मनुष्य के मन को वशीकृत किये रहता है। इस प्रकार लोक संगीत की सृजन प्रक्रिया सहज, स्वाभाविक एवं स्वयं स्फूर्त होती है। स्वच्छन्द भावनाओं की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति लोक-संगीत की प्राथमिक विशेषता है। लोक-गीतों को आशु रचना कहा जा सकता है। मुख से जब कोई स्वर-लहरी फूट पड़ी तो वह गीत बन गई। लोकगीतों में हृदय पक्ष प्रधान होता है, यह शास्त्रीयता की परिधि से दूर होते हैं।

साधारण समाज के लिए तो संगीत अन्य आवश्यकताओं के समान आवश्यक है ही किन्तु तनावग्रस्त भौतिकवादी आधुनिक समाज के लिए संगीत अत्यावश्यक है। संगीत का कोई भी रूप हो, लोक संगीत, सुगम संगीत, भजन, गजल, फिल्मी संगीत व शास्त्रीय संगीत, सभी का अपना-अपना वजूद है और सभी येन-केन प्रकारेण हमें प्रभावित करते हैं। लोक संगीत के भाव, सहज अकृत्रिम शब्द, सरल सुर, ताल, लय प्रत्येक भावुक व्यक्ति को अपने से लगते हैं। वहाँ कृत्रिमता का अभाव है। सूक्ष्म भाव आये काव्य बना और स्वर लहरी स्वतः फूट पड़ी, किसी विशेष राग ताल का चक्कर नहीं। लय चलती रहती है और गीत आगे से आगे बनता रहता है। लोक गीतों के इन सूक्ष्म भावों पर करोड़ों महाकाव्य न्यौछावर किये जा सकते हैं। बिना साज श्रृंगार के इस अप्रतिम अलौकिक सौन्दर्य का कोई जवाब नहीं। लय के लिए विशेष वाद्यों की कोई आवश्यकता नहीं। हमारा लोक संगीत इतना स्वाभाविक है कि यहाँ थाली, चम्मच, कटोरी बजा कर ही लय पूरित कर ली जाती है। घण्टों गीतों का हर्षोल्लास परिहास, श्रम का परिहार कर देते हैं

निष्कर्ष

तथापि वर्तमान काल में टेक्नोलाजी का बहुत विकास हुआ है। दूरस्थ संगीत शिक्षा को भी स्थान दिया जा रहा है। परन्तु इस पद्धति के द्वारा रागों की जानकारी दी जा सकती है, किन्तु क्रियात्मक शिक्षा सही ढंग से देना संभव नहीं है। क्योंकि इसकी भी एक सीमा है, राग की विशेषताओं तथा बारीकियों को गुरू के सम्मुख ही सीखना ठीक है। आधुनिक काल के समाज में चारों ओर युवा वर्ग को प्रलोभन देने वाली जो प्रवृत्तियाँ पनप रही है, वह शास्त्रीय संगीत की गुणवत्ता को बनाये रखने में सक्षम नहीं है। आज का युवा वर्ग फैशन शो, टी.वी. वीडियो की चकाचैंध में भ्रमित हो गया है। भारतीय संगीत में व्याप्त साधना तपस्या की भावना तिरोहित होती जा रही है। गुरू व शिष्य दोनों के दृष्टिकोण में बदलाव आ गया है। व्यवसायिक मानसिकता बढ़ जाने से कहीं-कहीं सांगीतिक वातावरण दूषित हो रहा है।

संदर्भ

1. कपूर प्रियंका. (2013). समाजशास्त्र का परिचय. दिल्ली: चित्रा प्रकाशन इण्डिया प्रा0 लि0, पृ0 72
2. आप्टे वामन शिवराम. (2014). संस्कृत हिन्दी शब्दकोश. वाराणसी: चैखम्भा विद्याभवन, पृ0 1074
3. वर्मा रामचन्द्र. (2013). संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर. वाराणसी: काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ0 1143
4. शर्मा निधि. (2016). हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत एवं समाज. दिल्ली: राधा पब्लिकेशन्स, पृ0 120
5. बसु, पुष्पा. (2013). संगीत निबन्ध कुंज. वाराणसी: मनीष प्रकाशन. पृ0 146
6. वही, पृ0 143
7. शर्मा, सत्यवती. (1995). संगीत का समाजशास्त्र. जयपुर: पंचशील प्रकाशन, पृ0 144
8. वही, पृ0 133
9. शास्त्री, ईना. (2018). संगीत प्रवाह प्प्. टोंक राजस्थान: नवजीवन पब्लिकेशन, पृ0 194